“आपकी कक्षा में अव्वल कौन है ?”

सी.एफ.एल. बंगलौर में अधिगम और आकलन का फलसफा

oidV'k vkdkj

सन 2011 में एमी चुआ की पुस्तक *बैटल हिम ऑफ द टाइगर मदर* के प्रकाशित होने पर अमेरिका में इसका भीषण विरोध हुआ। यह पुस्तक बच्चों के लालन-पालन की संस्कृति या शैली के बारे में है। लेखिका, जो एक प्रतिष्ठित अमेरिकी विश्वविद्यालय में कानून की प्रोफेसर हैं, इसे “चीनी” शैली का नाम देती हैं। इसमें यह बताया गया है कि बच्चों को किसी एक क्षेत्र में पूर्णता दिलाने के लिए इस बात पर जोर देना चाहिए कि वे एक दिन में कई घण्टे उस पर काम करें। उन्हें अपनी रुचि या अपने काम के पैटर्न के बारे में कोई विकल्प नहीं देना चाहिए। लेखिका की दोनों बेटियाँ संगीत में विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न हैं और दिन में कई घण्टे पियानो और वायलिन बजाने का अभ्यास करती हैं। यह भी लालन-पालन की एक शैली है जो यह माँग करती है कि अन्य विषयों की तरह ही इसमें भी माता-पिता के अधिकार का पूरा सम्मान और उनकी आज्ञा का पालन किया जाए और दैनिक जीवन के सभी पहलुओं में “उत्कृष्टता” के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखा जाए।

लेखिका लालन-पालन की ‘चीनी’ शैली तथा ‘पाश्चात्य’ शैली की विषमता के बारे में बताती हैं। पाश्चात्य शैली की विशेषता यह है कि इसमें माता-पिता बी ग्रेड मिलने पर अपने बच्चों की तारीफ करते हैं (“मुझे तुम पर नाज है ! तुमने बहुत मेहनत की !”) तथा कड़ी मेहनत करने पर जोर नहीं देते (यहीं पर हम इस किताब के विरुद्ध उत्पन्न आक्रोश के बीज देखने लगते हैं !) पाश्चात्य माता-पिता इस बात से भी डरते हैं कि अगर उन्होंने बच्चों से यह कहा कि उनका प्रदर्शन उनकी (माता-पिता की) अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं है तो कहीं बच्चों के आत्म-सम्मान को चोट न पहुँचे। लेखिका के अनुसार पाश्चात्य तरीके में हम यह मानकर चलते हैं कि बच्चे आकलन और समीक्षा का सामना करने में कमजोर होते हैं। लेकिन चीनी तरीके में बड़ी कठोरता व ईमानदारी के साथ समीक्षात्मक आकलन किया जाता है और यह माना जाता है कि बच्चा इसे समझने की शक्ति रखता है और वह इसका प्रयोग अपने सुधार के लिए करेगा। दिलचस्प बात यह है कि हमारे सन्दर्भ के लिए लेखिका अन्य अप्रवासी संस्कृतियों सहित ‘भारतीय’ तथा ‘पाकिस्तानी’ संस्कृतियों की विशेषताओं को ‘चीनी’ तरीके से मिलता-जुलता मानती हैं।

बैटल हिम ऑफ द टाइगर मदर पढ़ने में बढ़िया हास्यमय, व्यंग्यात्मक एवं कई स्थानों पर एक मजेदार पुस्तक है। जैसा कि मैंने पहले कहा इस पुस्तक का मुख्य विषय लालन-पालन की विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के बारे में बताना है। लेकिन दोनों संस्कृतियों के बारे में चुआ के वर्णन में जो बात विशिष्ट है, वह है, अग्रलिखित दो बातों के बारे में शक्तिशाली मान्यताएँ (i) स्कूल और घर में अधिगम तथा आकलन एवं (ii) आगे के अधिगम को प्रभावित करने के लिए यह आकलन बच्चों को कैसे फीडबैक देता है। पुस्तक में वैसे तो बहुत सारे व्यंग्य, हास्य और शक्ति है पर वे इन मान्यताओं पर सवाल खड़ा करने लिए कुछ खास काम नहीं करतीं।

मैं बंगलौर के पास सेण्टर फॉर लर्निंग (सी.एफ.एल.) नामक एक छोटे से अनौपचारिक स्कूल में काम करता हूँ। अधिगम और आकलन को लेकर हमारी मान्यताएँ *बैटल हिम* की लेखिका की मान्यताओं से कुछ अलग हैं। मैं अधिगम एवं आकलन (औपचारिक व अनौपचारिक) के बारे में अपने स्कूल के विचारों को स्पष्ट करने का प्रयास करूँगा और हम जिन विचारों और अभ्यासों का अनुसरण करते हैं उनके कारण भी बताऊँगा।

सी.एफ.एल. कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या कम है यानि हर कक्षा में दस से कम विद्यार्थी होते हैं। कक्षा और गृहकार्य (हमारा स्कूल आवासीय स्कूल है) के दौरान विद्यार्थियों को शिक्षक से अवधारणा की समझ या जिस

तरह से उन्होंने अपना काम करने की कोशिश की है-उसके बारे में फीडबैक मिलता है। विद्यार्थी भी यह बताते हैं कि उन्हें किसी अवधारणा को समझने में क्या दिक्कत हुई और शिक्षक उनकी इन विशिष्ट कठिनाइयों का उत्तर देते हैं। बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक दृष्टि से बच्चा स्कूल में कैसा है, इस बारे में शिक्षक माता-पिता के साथ सम्पर्क बनाए रखते हैं। तकरीबन साल भर इस प्रकार का फीडबैक नियमित रूप से दिया जाता है और साल के अन्त में हर विद्यार्थी को स्कूल के हर विषय तथा गतिविधियों के बारे में एक विस्तृत लिखित रिपोर्ट दी जाती है।

हम जिस प्रकार का आकलन करते हैं वह दूसरे स्कूलों से जरा अलग है। उदाहरण के लिए दसवीं कक्षा तक हमारे यहाँ कोई टेस्ट या परीक्षा नहीं है। दसवीं में विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा देते हैं जिसका उन्हें अभ्यास करना होता है। हमारी रिपोर्ट परिमाणात्मक की तुलना में अधिक गुणवत्तापूर्ण व गहन होती हैं। जब लोग इसके बारे सुनते हैं तो वे यह जानने के लिए उत्सुक हो जाते हैं कि आखिर विद्यार्थी का आकलन होता कैसे है और शिक्षक प्रगति का निर्धारण कैसे करते हैं। इस बात को मैं कुछ देर बाद स्पष्ट करूँगा।

हमारे स्कूल की एक केन्द्रीय दार्शनिक धारणा, जिसे स्कूल का प्रेरक विचार भी कह सकते हैं, यह है कि जिसे हम "अधिगम" कहते हैं वह केवल विषय पर आधारित या "गतिविधियों" (यानि "पाठ्येतर गतिविधियाँ") पर आधारित नहीं होती। हम जिसे "अधिगम" कहते हैं उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है और उसमें विभिन्न स्थितियों में अपने व्यवहार के बारे में सीखना भी आ जाता है। क्या मैं किन्हीं विशेष प्रकार की गतिविधियों का विरोध करता हूँ जैसे कि कठिन शारीरिक काम ? जब मैं ऐसे विरोध को देखता हूँ तो क्या होता है ? क्या इसकी तीव्रता और अवधि तय रहती है या इसके समाप्त होने की गुंजाइश है ताकि मैं उस गतिविधि को कर सकूँ ? किसी विशेष परिस्थिति में हमारी विशेष भावनात्मक प्रतिक्रिया कैसी होती है-इसके बारे में भी अधिगम हो सकता है; जैसे क्या कोई बच्चा आदतन गणित से डरता है ? इस डर की जड़ों व कारणों को देखने में हम उसकी मदद कैसे कर सकते हैं ? क्या उसके सीखने के माहौल में कुछ बदलाव लाने की जरूरत है ? हम (वयस्क व विद्यार्थी) एक-दूसरे के साथ कैसे सम्बन्ध रखते हैं - इस बारे में सीखना भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो सकता है। क्या हमारे मन में अपने साथियों को लेकर एक छवि बन चुकी है ? हम दूसरों की मदद करने को कितने तत्पर हैं ? हमारे समूह में सत्ता की संरचना, समावेशन और बहिष्करण के पैटर्न कैसे हैं। इस प्रकार का अधिगम इस अर्थ में संचयी नहीं है जिस अर्थ में गणित का अधिगम होता है; इसका सम्बन्ध इस बात से ज्यादा है कि हम वर्तमान समय में इन भावनात्मक धाराओं के प्रति कितने संवेदनशील हैं। इसलिए शिक्षक विद्यार्थियों को केवल "विषय" के नजरिए से नहीं देखते; बल्कि विद्यार्थी (और वयस्क) के भावनात्मक हितों पर भी विचार करते हैं। जिन पहलुओं का वर्णन मैंने ऊपर किया है उनमें से अनेक ऐसे हैं जो दैनिक रूप से एवं साल के अन्त में किए जाने वाले बच्चों के समग्र आकलन में शामिल किए जा सकते हैं। बेशक, भावनात्मक हित का "आकलन" भौतिकशास्त्र या इतिहास की प्रगति का आकलन करने से काफी अलग है!

अपने शैक्षिक दर्शन की पृष्ठभूमि बताने के बाद, अब मैं यह बताना चाहूँगा कि सी.एफ.एल. में टेस्ट या परीक्षाएँ क्यों नहीं होतीं। इसके लिए मैं पारम्परिक रूप से समझी गई परीक्षण की प्रक्रिया की कुछ सीमाओं के बारे में बताना चाहूँगा।

परीक्षण की शैली कोई भी हो, परीक्षण व्यापक हो या न हो, परीक्षण के परिणामों की व्याख्या ध्यानपूर्वक करनी चाहिए। निश्चय ही अंकों से कुछ तो पता चलता है। लेकिन जो कुछ पता चलता है उससे टेस्ट की संरचना एवं विषय-सामग्री प्रतिबिम्बित होती है न कि विद्यार्थी की "बुद्धिमत्ता" की निश्चित आन्तरिक गुणवत्ता। जो परीक्षा रटे हुए अधिगम का परीक्षण करती है, वह बस उतना ही करती है। आई.आई.टी. की जटिल प्रवेश परीक्षा समीकरणों में हेरफेर करने की विद्यार्थी की क्षमता का परीक्षण कर सकती है, लेकिन भौतिकशास्त्र या गणित में उसकी अवधारणात्मक गहराई या समझ के बारे में ज्यादा खुलासा नहीं कर सकती। प्रत्येक शैक्षिक वातावरण का अपना स्वरूप होता है, बुद्धिमत्ता को लेकर अपनी समझ होती है, और परीक्षण की संचयी शृंखला विद्यार्थी की "बुद्धिमत्ता" की एक तस्वीर बनाती है जो परीक्षण प्रणाली की खुद की

मान्यताओं से पूर्ण रूप से सीमित होती है। और हम इस तथ्य को पूरी तरह से नजर अन्दाज कर रहे हैं कि ऐसी कई क्षमताएँ हैं जिनका आकलन मानक परीक्षण नहीं कर पाता, जैसे कि जीवन की वास्तविक जटिल परिस्थितियों से निपटने की क्षमता। ग्रेड को 'बुद्धिमत्ता' का स्पष्ट संकेत मान लेना जाहिरा तौर पर एक संकुचित दृष्टिकोण है और इसीलिए परीक्षण की पारम्परिक प्रक्रिया से सावधान रहने का एक कारण भी है। जाहिर है कि ये सारी बातें इस तथ्य को नहीं बदल सकतीं कि अवधारणात्मक समझ और खुली सोच पर बल देने वाले और सोच-विचार कर तैयार किए गए टेस्ट विद्यार्थियों की समझ को स्पष्ट रूप से प्रकट कर सकते हैं और साथ ही विद्यार्थी की समझ में सुधार लाने में शिक्षक का मार्गदर्शन कर सकते हैं।

तो फिर वर्तमान में उपलब्ध सबसे अच्छी परीक्षण सामग्री को ही क्यों न अपनाया जाए। यानि कि "अच्छे" टेस्ट जो खुली सोच वाले और रचनात्मक हों ? टेस्ट और परीक्षा को पूर्ण रूप से क्यों छोड़ा जाए ? इसका एक जवाब तो यह है कि टेस्ट और परीक्षा और ग्रेड देने से निश्चित रूप से एक गम्भीर स्थिति पैदा हो जाती है: विद्यार्थी अपने प्रदर्शन की तुलना दूसरों के साथ करने लगते हैं जिसका प्रभाव उनके अधिगम एवं भावनात्मक हितों पर पड़ता है।

हमारी शैक्षिक संस्कृति में यह धारणा जमकर बैठ गई है कि हम केवल तुलना के माध्यम से आकलन कर सकते हैं। तुलना से हमें एक लक्ष्य मिलता है जिस तक हमें पहुँचना होता है ("तुम उसके जैसे स्मार्ट बन सकते हो"); और इसे विद्यार्थियों के जीवन का एक प्रमुख प्रेरक तत्व माना जाता है।

हम अक्सर यह देखते हैं कि विद्यार्थी प्रतियोगिताओं में बेहतर प्रदर्शन करने की बात से प्रेरित होते हैं, लेकिन ऐसे विद्यार्थी विषय को गहराई से समझने या उसके सौन्दर्य की सराहना करने की तुलना में आगे बढ़ने में ज्यादा रुचि रखते हैं। एक शिक्षक के रूप में मेरा लक्ष्य यह है कि विद्यार्थी विषय को गहराई से समझे और उसके सौन्दर्य की सराहना करे यानि स्कूलिंग का आनन्द उठाने में विद्यार्थियों की मदद करना, विषयों की गहराई एवं शक्ति को देख पाने में उनकी मदद करना ताकि उन्हें खुद विषयों के बारे में पता करने की प्रेरणा मिले, वे नए प्रश्न पूछें और समस्या को नए तरीके से देखें आदि। यही वह बौद्धिक जिज्ञासा एवं भावनात्मक जुड़ाव है जिससे शैक्षिक प्रयास के द्वार खुलेंगे और जिससे हमारे आसपास की दुनिया के लिए रचनात्मक और परिपक्व प्रतिक्रियाओं का निर्माण होगा। इस सम्भावना को अंकों व रैंकिंग प्रणाली में सीमित कर देना यानि एक सुअवसर गँवा देना।

मेरे विचार से विद्यार्थी वास्तव में प्रतियोगिता और तुलना से प्रेरित नहीं होते। 'अव्वल' आने वाले कुछ विद्यार्थियों को छोड़कर बाकी हजारों विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का अनुभव हतोत्साहित और चिन्ता-ग्रस्त करने वाला होता है। निश्चित रूप से इस तरह की मन:स्थिति का प्रभाव अधिगम पर बहुत जबर्दस्त होगा। अगर हमें विद्यार्थियों के जीवन को प्रभावित करना है तो प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोण पर सवाल उठाने ही होंगे। यह अच्छी बात है कि कठोर और व्यक्तिवादी रैंकिंग प्रणाली के अन्य विकल्पों तथा सहयोगी अधिगम के क्षेत्र में बहुत उत्कृष्ट शोध किए गए हैं (कृपया इस लेख के अन्त में दिए गए सन्दर्भ को देखें)। हाँ, यह एक अलग सवाल है कि क्या हम सामाजिक स्तर पर इन विकल्पों को लागू करने में सक्षम हैं ?

शिक्षक द्वारा कक्षा में तुलनात्मक आकलन अकसर आकस्मिक होता है,जैसे-"देखो, वह कितना अच्छा काम कर रहा है ! क्या तुम भी ऐसा ही कर सकते हो?" अकसर कक्षा प्रदर्शन के साथ निश्चित पुरस्कार और दण्ड जुड़े होते हैं (यह तो स्पष्ट है कि विद्यार्थी पर पुरस्कार और दण्ड से पड़ने वाले प्रभाव की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण और उलझन से भरी हुई है, अभी इसमें न पड़कर इतना कहना ही काफी होगा कि सतही तौर पर तो यह लगता है कि विद्यार्थी पुरस्कार और दण्ड से प्रेरित होते हैं लेकिन वास्तविकता में स्थिति इससे कहीं अधिक जटिल है)। सी.एफ.एल. में हमें यही उचित लगता है कि इस प्रकार के तुलनात्मक सन्दर्भों से बचा जाए: किसी नियम में बँधकर या आवेश में आकर या 'आदर्शोक्ति' के रूप में नहीं, बल्कि इस जागरूकता के साथ कि तुलना की यह संस्कृति समग्र अधिगम वातावरण को और विद्यार्थी विशेष के बौद्धिक व भावनात्मक हितों को प्रभावित करती है। इसी वजह से लिखित रिपोर्टों में भी तुलनात्मक मूल्यांकन को शामिल नहीं किया जाता।

बच्चों को हम टेस्ट दें या न दें, वे दूसरों के साथ अपनी तुलना करेंगे ही। उदाहरण के लिए वे अपने काम करने की गति की तुलना कर सकते हैं या किसी लिखित कार्य में लगे सही के निशानों की संख्या की तुलना कर सकते हैं! दूसरों को देखकर अपने बारे में बेहतर (या बुरा) महसूस करने की इस शक्तिशाली प्रवृत्ति को परीक्षा को हटा देने मात्र से दूर नहीं किया जा सकता। शिक्षक के रूप में हम इस सहज प्रवृत्ति के बारे में विद्यार्थियों को बता सकते हैं, इसके प्रभाव पर चर्चा कर सकते हैं और भावनात्मक सुरक्षा व असुरक्षा की जड़ों को देख पाने में उनकी मदद कर सकते हैं; एक ऐसी भावनात्मक सुरक्षा व असुरक्षा जो तुलना के माध्यम से आत्म-सत्यापन को खोजने की जरूरत के रूप में व्यक्त होती है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एक शिक्षक के रूप में हमें भय और चिन्ता को साथ लेकर आने वाली तुलना को एक प्रेरक तत्व के रूप में संस्थागत करने की कोई जरूरत नहीं है। बच्चे सीखते हैं और परीक्षा व टेस्ट के बिना भी अच्छी तरह से सीखते हैं।

उपर्युक्त सभी बातें स्कूल के ढाँचे में आने वाले विचार एवं सम्भावनाएँ हैं। यह विवाद अन्य सन्दर्भों में बहुत अलग रूप ले लेता है जैसे कि कॉलेज की प्रवेश परीक्षाएँ (उसमें भी ऊपर बताए गए कई बिन्दु लागू हो सकते हैं)।

जैसा कि मैंने पहले बताया, सी.एफ.एल. में दसवीं कक्षा तक कोई टेस्ट या परीक्षा नहीं ली जाती। दसवीं में विद्यार्थी बोर्ड की परीक्षा की तैयारी करते हैं। तो फिर हम बच्चों के प्रदर्शन का आकलन कैसे करते हैं ? चूँकि हमारे पास पाठ्यक्रम के स्पष्ट लक्ष्य हैं (विभिन्न प्रकार की क्षमताओं को समायोजित करने के लिए इसे काफी व्यापक रूप से तैयार किया गया है), इसलिए बच्चे द्वारा किया हुआ हर काम अपने आप में उसकी समग्र समझ के स्तर को बताने का सूचक है। इस प्रकार शिक्षक में यह जानने का कौशल होना चाहिए कि बच्चे को कौन-सा अभ्यास करना चाहिए या उसके समझने में क्या खमियाँ हैं और उसके अनुसार उन्हें आगे के लिए कदम उठाने चाहिए। बच्चे के गृहकार्य को इन कारकों के साथ काफी बारीकी से जोड़ा जा सकता है और जब शिक्षक गृहकार्य को सुधारते हैं तो आमतौर पर अच्छे परिणाम मिलते हैं। बहु-अनुशासनात्मक प्रायोजना कार्य (सी.एफ.एल. के विद्यार्थी नियमित रूप से ऐसे प्रायोजना कार्य करते हैं) सीमित आकलन को पेचीदा बना सकता है, लेकिन बच्चे की समझ के अनेक आयाम प्रकट कर सकता है; पर यह बात भी शिक्षक के इस कौशल पर निर्भर करती है कि वे किस प्रकार के मापदण्ड तथा अधिगम-परिणाम तैयार करते हैं।

इस प्रकार सी.एफ.एल. में बच्चे की 'रिपोर्ट' किसी कार्ड पर ग्रेड लिख देना मात्र नहीं होती या फिर उनमें इस प्रकार की अरुचिकर टिप्पणियाँ नहीं होतीं कि बच्चा "और बेहतर कर सकता है/होनहार है/कमजोर है", बल्कि इसमें तो विभिन्न मापदण्डों के आधार पर बच्चे की स्थिति का गुणवत्तापूर्ण विवरण दिया जाता है; जिनमें से कुछ मापदण्ड स्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं (जैसे बच्चा अल्पविराम का प्रयोग करता है, दो अंकीय गुणा कर सकता है) तो कुछ अमूर्त रूप से (समृद्ध और विवरणात्मक रूप से लिखने की क्षमता, या गणित की किसी समस्या में 'देख पाने' की क्षमता)। 'अमूर्त' मापदण्डों को भी छोटे टुकड़ों में तोड़कर रूब्रिक्स के द्वारा आकलित किया जाता है। इन रुब्रिक्स को शिक्षक-समूह आपसी विचार-विमर्श तथा सहमति के साथ तैयार करते हैं। यह बात सच है कि इस रिपोर्ट में केवल शिक्षक द्वारा निर्णित आवश्यक लक्षणों पर ही प्रकाश डाला जाता है, जो व्यक्तिपरक हो सकता है (वैसे भी यह तो गुणवत्तापूर्ण रिपोर्टिंग की आम आलोचना है ही और इसके बारे में आगे और खोज करने की जरूरत है)।

शिक्षक द्वारा विद्यार्थी के अधिगम के आकलन को स्वयं विद्यार्थी के आत्म-आकलन द्वारा गहन किया जा सकता है जो शिक्षकों द्वारा बनाए गए कुशल मापदण्ड पर आधारित हो। उदाहरण के लिए अँग्रेजी की कक्षा में हम ऐसे सरल सवाल पूछ सकते हैं-क्या आपका निबन्ध अनुच्छेदों में विभाजित था ? क्या हर अनुच्छेद एक अलग और स्पष्ट विचार के बारे में था ? क्या अनुच्छेद के वाक्यों में प्रवाह था या वे असम्बद्ध थे ? क्या आपने मुख्य विचार का वर्णन करने के लिए उदाहरण दिए ? विद्यार्थी का आत्म-आकलन अक्सर उनके सीखने की क्षमता के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ इंगित करता है, और इस बात का शिक्षक द्वारा विद्यार्थी के अधिगम का आकलन किए जाने वाले तरीके में बहुत महत्त्व है। शिक्षक विद्यार्थी के बारे में जो रिपोर्ट लिखते हैं उसमें इस तरह के आत्म-आकलन

को भी शामिल किया जाता है ।

कक्षा में कम बच्चे हों तो उपर्युक्त कुछ प्रक्रियाएँ आसानी से की जा सकती हैं (हमारे स्कूल में हर कक्षा में दस से कम बच्चे होते हैं)। कक्षा में बच्चों की संख्या अधिक हो तो हर बच्चे के लिए गुणवत्तापूर्ण रिपोर्ट लिखना वाकई कठिन है। कभी-कभी मैं यह सोचता हूँ कि टेस्ट/परीक्षा मॉडल और प्राप्तांकों को ही समझ की पहचान बनाने के बजाए बच्चे की प्रगति का समग्र पाठ्यक्रमीय आकलन (साल भर चलने वाला व अन्तिम दोनों) बनाए रखना सम्भव है या नहीं। सैद्धान्तिक रूप से क्या यह सम्भव है कि भारतीय सन्दर्भ में बड़ी कक्षाओं के लिए भी आकलन के ऐसे रूब्रिक्स बनाए जाएँ जो पूरी तरह से परीक्षा पर निर्भर न हों ? मेरे हिसाब से भारतीय शैक्षिक सन्दर्भ में यह क्षेत्र अनुसन्धान के सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण (और सर्वाधिक उपयोगी) क्षेत्रों में से एक है।

इस लेख में पहले मैंने स्कूली शिक्षा दर्शन के प्रधान सिद्धान्तों का वर्णन किया था, जिसे संक्षेप में "अपने बारे में सीखना" कह सकते हैं। मेरे एक सहयोगी के अनुसार हम वह सब कुछ जानने का प्रयत्न करते हैं जिसे शिक्षा के सन्दर्भ में आमतौर पर नजरअन्दाज कर दिया जाता है। अगर कक्षा में कोई बच्चा डरा हुआ है या उसका ध्यान बँटा हुआ है तो हमें उसके कारण का पता लगाना चाहिए और यह तभी सम्भव है जब हम उस बच्चे से बात करें। अपने बारे में इस तरह से सीखने को हम एक महत्त्वपूर्ण मानव गतिविधि के रूप में देखते हैं न कि किसी ऐसी तरकीब के रूप में कि जिसके द्वारा बच्चे को अकादमिक विषय सिखा दिए जाएँ या किसी प्रायोजना में उसे सफलता दिला दी जाए!

इस प्रकार किसी विषय की रिपोर्ट में विद्यार्थी की 'भावनात्मक हालत' के बारे में शिक्षक के विचार भी शामिल किए जाते हैं। उसके प्रेरक स्तर क्या हैं ? क्या वह केवल शिक्षक को खुश करने के बारे में चिन्तित है या वह विषय की माँगों को धैर्यपूर्वक समझने में समर्थ है ? क्या उसका ध्यान आसानी से बँट जाता है ? क्या साथियों का व्यवहार उसकी भावनाओं के साथ खिलवाड़ कर रहा है ? हम इस शक्तिशाली पकड़ को कैसे ढीला कर सकते हैं (इसलिए नहीं कि वह कक्षा में ध्यान दे सके बल्कि इसलिए कि भीतरी स्वतंत्रता की भावना अपने आप में महत्वपूर्ण है) ? वह भावनात्मक रूप से ठीक है या दुखी ?

ये धारणाएँ कुछ हद तक ही व्यक्तिपरक हैं, पूरी तरह से नहीं। आमतौर पर शिक्षक एक-दूसरे की रिपोर्ट पढ़ते हैं और जब वे उसी विद्यार्थी के बारे में अपने सहयोगी के अनुभव सुनते हैं तो उनकी धारणा बदल भी सकती है। कभी-कभी तो शिक्षक अपने विद्यार्थियों की स्थिति के बारे में रोज आपस में बातचीत करते हैं। इस अर्थ में सी.एफ.एल. में रिपोर्ट लिखने का काम एक सामूहिक काम है जिसमें व्यक्ति की स्वभावगत विशिष्टता नहीं आ पाती।

मैंने सी.एफ.एल. में आकलन के दर्शन और अभ्यास के अभिप्राय को बताने की कोशिश की है। हम शिक्षकों के लिए यह जरूरी है कि हम ऐसी प्रक्रिया को ब्लूप्रिण्ट पर आधारित करने की बजाए शिक्षा और हितों के प्रश्नों एवं विद्यार्थियों के सूक्ष्म अवलोकन के आधार पर करें। रिपोर्ट किसी बच्चे के जीवन की स्थिति के बारे में न तो अन्तिम दस्तावेज है और न ही पत्थर पर खिंची लकीर। बल्कि इसे तो बदलती हुई जटिल वास्तविकता यानि कि स्कूल के विद्यार्थी के बारे में विद्यार्थियों, माता-पिता और शिक्षकों के मध्य की बातचीत की शुरुआत के रूप में देखा जाना चाहिए।

References:

Mukunda,Kamala: What Did You Ask At School Today ?
HarperCollins Publishers

वेंकटेश *बंगलौर के बाहर स्थित एक छोटे से अनौपचारिक स्कूल सेण्टर फॉर लर्निंग में कार्यरत हैं । वे समाजशास्त्र, अँग्रेजी साहित्य एवं इतिहास पढ़ाते हैं। उनसे vonkar@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : नलिनी रावल*